हिन्दी साहित्य इतिहास की परम्परा (लेखन परम्परा)

इतिहास अतीत का दस्तावेज होता है। अतीत की स्थिति घटना, प्रक्रिया और प्रवृत्ति की व्याख्या का समावेश इतिहास में किया जाता है। पर साहित्य के इतिहास में साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन काल-क्रम की दृष्टि से किया जाता है। साहित्यिक इतिहास के रचनाओं को समझने के लिए उनके रचयिताओं तथा उनसे सम्बन्धित स्थितियों परिस्थितियों आदि का अध्ययन किया जाता है। साहित्य के इतिहास लेखन परम्परा के प्रति काल-क्रम से विविध प्रकार के दृष्टिकोणों का विकास बड़ा रोचक है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखन परम्परा में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अनेक कवियों और लेखकों द्वारा अनेक ऐसे ग्रन्थों का निर्माण हुआ, जिनमें हिन्दी साहित्य के निर्माताओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह सब व्यष्टि रूप में हुआ, जिनमें समग्र ऐतिहासिक चेतना का भी अभाव है। अतः इन ग्रन्थों को सच्चे अर्थों में इतिहास नहीं कहा जा सकता है।

अब तक की जानकारी के अनुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रथम श्रेय फ्रांसीसी विद्वान 'गार्सा द तासी' को जाता है। इन्होंने फ्रेंच भाषा में 'इस्तवार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी' नामक ग्रन्थ लिखा। यह साहित्य तीन खंडों में विभक्त है। फिर इसमें हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू के अनेक कवि-कवियित्रियों का परिचय दिया गया है। इस ग्रन्थ से तासी का कलेवर अत्यधिक बढ़ गया। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तासी का प्रयास भाषा एवं वैज्ञानिक दृष्टि से अनुचित नहीं है। लेखक ने हिन्दी के प्रमुख कवियों एवं उनकी जीवनियों का विवरण तो दिया है, पर उनकी साहित्यगत प्रवृत्ति का उल्लेख नहीं किया है। इसके साथ ही उन्होंने काल-विभाजन का भी कोई प्रयास नहीं किया है। उपर्युक्त परिसीमाओं के बावजूद तासी के इतिहास का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व है। भारत से बहुत दूर फ्रांस देश में बैठकर विदेशी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखना कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। इस रूप से तासी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन परम्परा में इतिहास के श्री-गणेश-कर्ता के प्रवर्तक के गौरवपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

इस परम्परा में दूसरा स्थान शिवसिंह सेंगर का है। सन् 1883 में इन्होंने 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें लगभग 1000 भाषा कवियों के जीवन-चरित्र एवं उनके कृतित्व का उल्लेख है। इतिहास की दृष्टि से इस ग्रन्थ का अधिक महत्व नहीं है, परन्तु फिर भी इसमें हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन के लिए उपयोगी सामग्री को व्यापक रूप से संकलित कर लिया गया है।

इस परम्परा में तृतीय उल्लेखनीय व्यक्ति जार्ज ग्रियर्सन हैं। इन्होंने 1888 में सरोज को ही आधार बनाकर 'द मार्डन वर्नेक्युलर लिट्रेचर आफ हिन्दोस्तान' का प्रकाशन एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में किया। किन्तु इन्होंने अपने ग्रन्थ में काल-विभाजन के साथ-साथ समय-समय पर उभरी हुई प्रवृत्तियों का भी दिग्दर्शन करा दिया। अतः ग्रियर्सन का प्रयास अधिक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित है। इसमें कवियों की संख्या 952 है। इस ग्रन्थ के नाम से इतिहास के भाव का बोध नहीं होता, पर इसे सच्चे अर्थों में हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास ग्रन्थ माना गया है। ग्रियर्सन की हिन्दी साहित्य के स्वरूप एवं विकास से सम्बद्ध मान्यताएँ आगे चलकर इतिहास के लेखकों का पथ प्रदर्शन करती रहीं। उन्होंने हिन्दी भाषा की परिधि से अन्य भाषा को अलग रखा। उन्होंने काल-विभाजन करते हुए प्रत्येक काल की परिस्थितियों, प्रवृत्तियों एवं प्रेरक स्रोत का निर्देश किया। उन्होंने भक्ति काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक ओर यदि तासी, एक विदेशी विद्वान, हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम लेखक ठहरते हैं, तो दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के इतिहास को वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय भी एक विदेशी विद्वान जार्ज ग्रियर्सन को है।

हिन्दी इतिहास लेखन की परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय मिश्रबन्धुओं को जाता है। इनके द्वारा लिखा गया ग्रन्थ "मिश्रबन्धु विनोद" है। यह चार भागों में विभक्त है। इसमें 2250 पृष्ठ हैं, जिसमें 5000 से भी अधिक कवियों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में साहित्य के विभिन्न पक्षों को प्रकाश में लाया गया है तथा काव्य की समीक्षा परम्परागत सिद्धान्तों के अनुकूल की गई है। इसलिए इसमें आधुनिकता का अभाव है। यद्यपि मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रन्थ को इतिहास का नाम नहीं दिया था, एक आदर्श इतिहास ग्रन्थ बनाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया, जिसमें उन्हें पूर्ववर्ती लेखकों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है।

इतिहास लेखन की इसी परम्परा को शिखर पर ले जाने वाले तत्वदर्शी विद्वान लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सन् 1929 में "हिन्दी साहित्य का इतिहास" नामक एक ग्रन्थ लिखा। यह 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित हिन्दी शब्द सागर की भूमिका के लिखा गया था, पर बाद में स्वतंत्र रूप से परिवर्तित एवं विस्तृत रूप लेकर हिन्दी साहित्य में पदार्पित हुआ। शुक्ल जी का यह प्रयास हिन्दी साहित्य की लेखन परम्परा से जुड़े परवर्ती विद्वानों के लिए आलोक स्तम्भ साबित हुआ। शुक्ल जी ने साहित्य को जनता की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब स्वीकार किया। उन्होंने कवियों की संख्या की अपेक्षा उनके साहित्यिक मूल्यांकन को महत्व दिया। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार काल खंडों — आदिकाल, वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल — में विभाजित किया है।

सरलता एवं सुस्पष्टता के कारण शुक्ल जी का काल-विभाजन बहुत समय तक मान्य रहा, पर आज का साधन-सम्पन्न विद्वान शुक्ल जी के काल-विभाजन को मान्यता नहीं देते। क्योंकि शुक्ल जी द्वारा इतिहास तैयार करते समय हिन्दी का प्रारम्भिक-साहित्य अज्ञात, अप्राप्य एवं अप्रकाशित था। अतः उन्हें कल्पना और अनुमान का सहारा लेना पड़ा, जिसके कारण उनके इतिहास लेखन में त्रुटियाँ एवं एकपक्षीयता आ गई। इन परिसीमाओं के बावजूद भी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा में शुक्ल जी का इतिहास नींव के पत्थर के समान है। आज के हिन्दी साहित्य के इतिहास के विशाल भवन की सुदृढ़ नींव सशक्त आलोचक एवं समर्थ सक्षम इतिहासकार आ० शुक्ल ने रख दी थी। अतः हिन्दी साहित्य के इतिहास का जनक शुक्ल जी ही माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है। —

"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्त-वृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्तियों के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चलता है। इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ इनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।

इसके बाद डा० श्यामसुन्दर दास कृत 'हिन्दी भाषा और साहित्य' एवं श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'हिन्दी भाषा और उसका विकास' का स्थान है। किन्तु ये उतनी प्रासंगिक नहीं हो सकी।

फिर आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस श्रृंखला को आगे बढ़ाया। उन्होंने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' तथा 'हिन्दी साहित्य का आदि-काल' नामक कई ग्रन्थ लिखे, जो हिन्दी साहित्य को एक नवीन दिशा में उपलब्ध कराते हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल द्वारा उन्होंने एक ओर हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल को एक नई दिशा प्रदान की, तो दूसरी ओर मध्यकालीन साहित्य को एक नवीन, व्यापक एवं उदार दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा दी। अतः हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी का इतिहास शुक्ल जी के इतिहास का पूरक है।

इस परम्परा में आ० द्विवेदी के इतिहास ग्रन्थों के साथ-साथ डा० रामकुमार वर्मा द्वारा रचित "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' भी प्रकाशित हुआ। डा० रामकुमार वर्मा ने शुक्ल जी के काल-वर्गों एवं काव्यधाराओं में थोड़ा का अनुसरण किया। इन्होंने काल-वर्गों की संज्ञा दी। इन्होंने किया और वीरगाथाकाल को चारण-काल की संज्ञा दी। इन्होंने पूर्व संधि काल को जोड़ कर अपभ्रंश के प्रायः सभी कवियों को इसमें समेट लिए।

इसके बाद विभिन्न विद्वानों के सहयोग से डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित "हिन्दी - साहित्य' कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इसमें साहित्य के इतिहास को तीन भागों में बाँटा गया है एवं समस्त काव्य-परम्पराओं का वर्णन स्वतंत्र रूप से किया गया है तथा रासो काव्य की परम्परा को नवीन रूप से जोड़ा गया है। काल-विभाजन, विषय-निरूपण एवं शैली आदि की दृष्टि से यह ग्रन्थ आचार्य शुक्ल के ग्रंथ से काफी भिन्न है। विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित होने के कारण इसमें एकरूपता का भी अभाव है।

इसी ओर "नागरी प्रचारिणी सभा काशी' ने हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास प्रकाशित किया। इसमें हिन्दी साहित्य के इतिहास को 18 भागों में विभक्त किया गया है। इस शृंखला के प्रकाशित खंडों में डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित षष्ठ भाग रीतिकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

इसके बाद डा० नगेन्द्र द्वारा रचित ग्रन्थ "हिन्दी साहित्य का इतिहास" तथा हिन्दी वाङ्मय बीसवीं सदी प्रकाशित हुआ। इनमें इतिहास के अज्ञात पक्षों को प्रकाश में लाया गया तथा ज्ञात पक्षों को वैज्ञानिक एवं विकासवादी आलोक में प्रस्तुत किया गया।

उपर्युक्त इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखंडों, काव्यरूपों एवं धाराओं पर शोध-प्रबन्ध तथा समीक्षात्मक ग्रन्थ प्रकाश में आये। इनमें साहित्य के अनेक अज्ञात तथ्यों एवं नवीन दृष्टिकोण से नवालोक में प्रस्तुत किया गया है। अनिर्णीत प्रश्नों को

संक्षेप में हिन्दी साहित्य के इतिहास की लेखन-परम्परा, साहित्य के इतिहास लेखन के प्रति काल-क्रम से विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों का विकसित रोचक रूप है।

इसके अतिरिक्त भी अनेक शोध प्रबंध और समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे गए हैं, जो हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास को तो नहीं किन्तु उसके किसी एक पक्ष या अंग या काल को नूतन ऐतिहासिक दृष्टि और नयी वस्तु प्रदान करते हैं। जैसे डा० नगेन्द्र की रीतिकाव्य की भूमिका' डा० भगीरथ मिश्र का 'हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास' आदि।"

इस प्रकार गार्सां द तासी से लेकर अब तक की परम्परा के संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि लगभग एक शताब्दी की ही अवधि में हिन्दी-साहित्य का इतिहास लेखन अनेक दृष्टियों रूपों और पद्धतियों को आकलन और समन्वय करता हुआ संतोषजनक प्रगति कर गया है। इतना ही नहीं हमारे लेखकों ने न केवल विश्व इतिहास दर्शन के बहुमान्य सिद्धान्तों और प्रणालियों को अंगीकृत किया है, अपितु उन्होंने ऐसे नये सिद्धान्त भी प्रस्तुत किये हैं, जिनका अनुसरण अन्य-भाषाओं के इतिहासकार भी उनका सम्यक मूल्यांकन होने पर कर सकते हैं।